अध्याय : चतुर्थ

मेवाड़ का शासन प्रबन्धन

4.0 मेवाड़ में जागीरदारी व्यवस्था : सर्वेक्षण –

यद्यपि वर्तमान समाज के बदलते हुए परिवेशों में सामन्तवादी समाज का यह स्वरूप नहीं दिखाई पड़ता है, जो पिछले युग में दिखाई देता था, फिर भी इस समाज संगठन के अपने लक्षण समाजशास्त्रिय विशेषताऐं इस सन्दर्भ में कुछ तथ्य प्रस्तुत करती है।

मैक्स वेवर[1] में अभिवृत्तियों के तीन प्रमुख विद्यमानों (तार्किक – वैधानिक, परम्परागत तथा चमत्कृत) में सामन्तशाही संगठन की पृष्ठभूमि में परम्परागत तथा चमत्कृत व्यक्तियों को स्वीकार किया है। अनुवांशिक चरित्र में अलग मैक्स वेवर ने सामन्तशाही समाज को जागीर का प्रतिरूप माना है। मैक्स वेवर का विश्वास था कि सामन्तवादी अभिवृति के दो प्रधान स्वरूप हो सकते हैं – या तो जागीरी प्रवृत्ति अथवा राजकीय वृति। शेष समस्त स्वरूप अनुवांशिक लक्षण से सम्बन्धित है। मैक्स वेवर की यह सम्पूर्ण विवेचना अभिवृत्तियों एवं शक्तियों के विवेचन के सन्दर्भ की है। सामन्तशाही समाज के प्रतिरूप को प्रामाणिक दृष्टि से सम्भवतः जोसेफ आर. स्ट्रेयर एवं कोलबोर्न[2] में अधिक स्पष्ट करने की चेष्टा की है। लेखक वय के अनुसार सामन्तवाद शासन की वह व्यवस्था है जिसमें वास्तविक सम्बन्ध शासक और प्रजा अथवा राज्य और नागरिक का नहीं अपितु मालिक और मातहत का है। राजनैतिक कार्यों का किया जाना कुछ चुने हुए सिमित संख्या में व्यक्तियों के साथ व्यक्तिगत समझौते के साथ निषद्ध है। संपूर्ण विकसित सामन्तशाही समाज में जागीर एवं मातहती दोनों का

सम्पूर्ण विकास होता है। प्रामाणिक दृष्टि से दोनों ही विवेचन सामन्तवादी समाज का चित्रण एक ऐसे रूप में प्रस्तुत करते हैं जहाँ सम्पूर्ण राजनैतिक व्यवस्था एक हाथ में केन्द्रित हो, कुछ कार्यों में बिखर जाती है सम्बन्ध सदैव मालिक और मातहती के ही रहते हैं चाहे वह जागीरदारों और राणा के बीच हो अथवा राजा–जागीर–मातहतों के बीच।

यद्यपि राजस्थान का आधुनिकतम स्वरूप सामान्य रूप के अधिकाधिक राजनैतिक हिस्सेदारी के साथ बदल रहा है, पर आलोच्यकाल आज की व्यवस्था से बिलकुल भिन्न था। राजपुताना राज्यों में अधिकृत सम्बन्ध "संकीर्ण–परतंत्र राजनैतिक संस्कृति" (Parochial – subject political cutlure) का प्रतीक है। किसी भी राजनैतिक गतिविधि में भाग लेने के अधिकार मात्र राजनैतिक अधिकृति के वंशज उनके प्रतिनिधियों अथवा उन उच्च जातीय नगरीय समूहों के व्यक्तियों को था जिन्हें राज्य में धार्मिक अथवा प्रशासनिक कार्यों के लिए नियुक्त किया हो।

टॉड[3] की मान्यता थी कि राजस्थान का राजनैतिक संगठन निश्चित ही सामन्तशाही था। जिसमें सम्पूर्ण राजनैतिक शक्ति भूमिपतियों के एक वर्ग के हाथों निहित थी। सर एल्फ्रेड लयाल[4] का विचार था कि टॉड सम्भवतः 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पुराने समाजों के इतिहास लेखन की अवधारणात्मक विचारों से प्रभावित था। लायल का विचार था कि जागीरों और केन्द्रिय सत्ता का यह संगठन राजपूत जाति व उसके गोत्र संगठनों पर अधिक आश्रित थी। गोत्र का प्रमुख राजा एवं अन्य प्रमुख लोग राजा के अधिकार से शासक – यही स्वरूप था। अधिकार के सम्बन्ध में कोई भी झगड़ा गोत्र आधार पर निपटा लिया जाता था। जे. सदरलेंड जो एक ब्रिटिश प्रशासक था और इस क्षेत्र से परिचित था कि राजा की इच्छाओं पर शक्तिशाली परम्परागत सरदारों का निर्देशन एवं नियन्त्रण

था। इन सरदारों को राजा से अलग प्रकार के अधिकार थे। बहुत से राज्यीय आंतरिक संघर्ष इस बात का प्रमाण है।

उपर्युक्त सभी विवेचनाऐं राजस्थान में सामन्तवादी समाज में राजनैतिक सत्ता, अधिकार एवं सम्बन्धों की विशेष व्यवस्थाओं का सूचक है। प्रस्तुत अध्याय मेवाड़ राज्य की इन्हीं व्यवस्थाओं का विवेचन है। मेवाड़ राज्य की स्थापना (8वीं शताब्दी) काल से[5] राज्य की शक्ति पर राजपूत जाति के गुहिल शाखा और उनके रक्त बान्धव सिसोदिया शाखा के सदस्यों का अधिकार रहा था। यह अधिकारी राज्य में श्री जी कहलाते थे।[6]

राणा उनकी उपाधि थी एवं उनके आदेशों को श्रीमुख आदेश कहा जाता था। अधिकारी राज्य के दैवीक शक्ति का उपभोग करते हुए स्वयं को दीवान (राज्य का प्रधान) तथा अपने ईष्ट देव एकलिंगजी (शिव) को राज्य का अधिष्ठाता मानते थे।[7] इस प्रकार राज्य की शासन प्रणाली में धार्मिक राजनीति भी प्रभावशाली थी। समाज की राणा की आन (शपथ) सर्वोपरि तथा ईश्वर तुल्य मानी जाती थी। राज्य का कार्य व्यापार राणा के नाम पर चलता था। किन्तु इस व्यवस्था और प्रबन्ध को चलाने के लिए राणा द्वारा अपने सगौत्री, बान्धव, सम्बन्धी तथा कुल के लोगों से सहायता प्राप्त की जाती रही थी।[8] इसका मुख्य कारण था कि एक ही कुल एवं जाति के सदस्यों के फलस्वरूप वे अपने शासक राणा का नेतृत्व स्वीकार करने तथा शासकीय – नीतियों को प्रभावी बनाने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। कुलिय भावना से प्रेरित राजनितिक प्रशासकों का यह जातीवादी संगठन राज्य का प्रमुख सामन्त वर्ग था। इस वर्ग के लोक शासक प्रदत्त अथवा स्वधिकृत क्षेत्र में शान्ति व्यवस्था और प्रशासनिक प्रबन्ध बनाए रखने के साथ–साथ राणा की सैन्य सहायता प्रदान करने के नैतिक कर्तव्यों का

पालन करते थे। नैतिक कर्तव्यों की यह भावना सामुदायी राजनैतिक अधिकारों को राज–व्यवस्था के कारण जागृत रहती थी। इस व्यवस्था में शासक की राजपूत जाति में स्थिति ''बराबर में प्रथम'' के समान थी। शासक के प्रत्येक क्रियाकलाप में इन सामन्तों का परामर्श आवश्यक था क्योंकि राज्य में इनकी हिस्सेदारी मानी जाती थी।[9] इन सामन्तों के अतिरिक्त राज्य–समाज की धार्मिक सेवाओं को प्रतिपादन करने वाले सामन्त थे। जिनका कार्य राज्य की धर्माचरण व्यवस्थाओं को बनाए रखने में शासक को सहयोग देना था।

19वीं शताब्दी के पश्चात् मुगल सामन्त व्यवस्था की जागीरदारी प्रथा में मेवाड़ की सामन्तशाही को प्रभावित किया।[10] फलतः राणा अमर सिंह प्रथम ने भोमिया और गरासिया नामक जागीरदारी वर्गों का निर्माण किया था। भोम जागीर का जागीर क्षेत्र परिवर्तित नहीं किया जाता था एवं गरासिया जागीर का जागीर क्षेत्र प्रत्येक तीन वर्ष पश्चात् बदल दिया जाता था। प्रथम वर्ष की जागीर का पट्टा सैनिक सेवा करते रहने तक स्थाई तौर पर प्रदान किया जाता था। जबकि द्वितीय वर्ष का पट्टा सैनिक सेवा के बदले में जीविका हेतु दिया जाता था।

इसके पश्चात धर्मार्थ जागीर की परम्परा में कोई परिवर्तन नहीं किया गया था। इस व्यवस्था में समय के साथ साथ स्वेच्छारी सामन्तिक प्रवृत्ति के दोष उत्पन्न होने लगे थे। स्थाई जागीरदार एक ही स्थान के प्रशासन को चलाते रहने के फलतः अपनी शक्ति बढ़ा लेते थे और जब चाहे स्वामी शासक के प्रति विद्रोह कर सकते थे। इसके साथ ही जागीर हस्तांतरण ने राजस्व निर्धारण एवं संग्रहण उत्तरदायित्व के साथ–साथ राजस्व अनुपात पर प्रदान की जाने वाली सैनिक सेवाओं में वाद–विवाद

संशय उत्पन्न करना भी प्रारंभ कर दिया था। अतः 18वीं शती के प्रारम्भ में राणा अमर सिंह द्वितीय द्वारा जागीर संगठन को पुर्नगठित किया गया।

4.1 आलोच्यकालीन सामन्तशाही –

राणा अमर सिंह द्वितीय ने पूर्ववर्ती जागीर संगठन को सामाजिक – आर्थिक स्थिति के अनुसार नवीनीकरण किया। इस स्थिति में सामाजिक – राजनीतिक आर्थिक स्तरण स्थापित कर तीन प्रकार के सामन्त – स्तर बनाये गये। प्रथम स्तर में सामाजिक – राजनीतिक प्रतिष्ठा, पद और सम्मान के रूप में शुद्ध राजपूत सामन्त सम्मिलित किये गये। द्वितीय स्तर पर सामाजिक धार्मिक प्रतिष्ठा, पद और सम्मान के क्रम में महन्त, ब्राह्मण, चारण वादि अन्य जाति के सामन्त, तथा तृतीय स्तर पर शासक कृपापात्री एवं राज्य अधिकारी सम्मिलित किये गये थे। यह सभी स्तर पुनः विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किये गये थे।

4.2 मेवाड़ शासन प्रबन्ध में सामन्तों की भूमिका –

प्रथम श्रेणी के जागीरदारों में पांच वर्ग में विद्यमान थी –

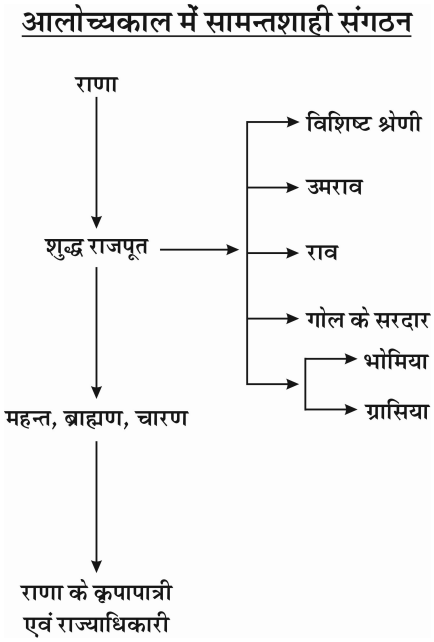

प्रथम श्रेणी के उमरावों की शक्तियाँ –

इस श्रेणी के सामन्त राजनीतिक – सामाजिक प्रतिष्ठा एवं आर्थिक स्थिति में राणा के पश्चात् स्थान रखते थे। मेवाड़ में महाराणा अमरसिंह द्वितीय के समय से महाराणा अरिसिंह के शासन काल तक बड़ीसादड़ी, देलवाड़ा और गोगुन्दा ठिकाने के तीन सरदार झाला बिजौलिया ठिकाने का एक सरदार पंवार, सरदारगढ़ ठिकाने का एक डोड़ीया सरदार, बेदला, कोठारिया और पारसोली ठिकाने के तीन चौहान सरदार, गोरवाड़ तथा बदनोर के दो राठौड़ सरदार थे। हम दस ठिकानों के ठिकानेदार सामन्त राणा वंशज नहीं थे। राणा वंशज सामन्तों में सात चूण्डावत, दो शक्तावत, क्रमशः सलूम्बर, देवगढ़, बेगूं, आमेट, भैंसरोडगढ़, कुराबड़, कान्होड़, भीण्डर एवं बासी के ठिकानेदार थे।[11]

18वीं शताब्दी के मध्य तक मराठा उपद्रव में गोड़वाड़ जागीर जोधपुर राज्य में चली गई थी। 19वीं शताब्दी में राणा जवान सिंह एवं राणा शम्भू सिंह द्वारा आसींद तथा मेजा नामक दो ठिकाने बना कर दो चूण्डावत सरदारों को प्रथम श्रेणी की जागीरदारी में सम्मिलित किया गया था। इस प्रकार आलोच्यकाल के अन्त तक इस श्रेणी में 9 चुण्डावत, 3 शक्तावत उमराव राणा के वंशज थे जबकि अन्य 9 वंशज बाह्य रहे थे। इस स्थिति के अनुसार चुण्डावत सामन्त सदैव शक्तिशाली रहे थे। इस प्रकार मेवाड़ शासन प्रबन्ध में राज्य का प्रधान का पद सलुम्बर ठिकाने के रावत के अधिकार में था और इसी लिए सलुम्बर ठिकाने को राज्य में विशेषाधिकार प्राप्त थे। इन अधिकारों में राज्य को भांजगढ़/मुख्य परामर्शदाता अर्थात् प्रधान की शक्तियाँ प्राप्त थी जो राज्य की रक्षा और युद्ध के समय हरावल प्रमुख (मुख्य सेनाधिपति), शरणा (अपराध संरक्षण) तथा उत्तराधिकार मनोनयन का मुख्य परामर्शदाता के अधिकारों के साथ

राज्यादेश की प्रथम स्वीकृती प्रदान करने का अधिकार सम्मिलित था।[12] चूण्डावतों में देवगढ़ वाले ठिकानेदार को भी शरणा का अधिकार प्राप्त था। शक्तावत सरदारों में 18वीं शताब्दी में राज्यादेशों पर सही (स्वीकृती) के अधिकार की मांग करते हुए राणा अमर सिंह द्वितीय पर राजनीतिक दबाव डाला था। परिणामतः राज्यादेश – स्वीकृति का अधिकार सलुम्बर के चुण्डावत सरदार तथा भीण्डर के शक्तावत सरदार में बांट दिया गया। राज्यादेश अंकित भाले का चिन्ह बनाने का अधिकार सलुम्बर को तथा उसके साथ अंकुश का चिन्ह बनाने के लिये भीण्डर को अधिकृत किया गया था।[13] सलुम्बर रावत की अपनी जागीर में जागीर का सिक्का चलाने की विशेष अनुमती परम्परा द्वारा मिली हुई थी। इन उमरावों को सोलाह के सरदार कहा जाता था यद्यपि इनकी संख्या सोलह से अधिक राणा की इच्छानुसार घटाई – बढ़ाई जा सकती थी किन्तु राणा अमर सिंह द्वितीय द्वारा निर्धारित दरबार में सोलह बैठक के अनुसार राज्य मंत्रणा और परामर्श हेतु सोलह उमरावों को ही आमन्त्रित किया जाता था।[14] यह आमन्त्रण प्रदान करना शासक की इच्छा पर निर्भर होता था।

इस श्रेणी के सामन्तों की राजनीतिक शक्ति राणा प्रताप सिंह द्वितीय के पश्चात् शासकीय दुर्बलता एवं मराठा अतिक्रमणों के फलस्वरूप दिनों दिन तक बढ़ती गई थी। राणा भीमसिंह के शासन काल तक चूण्डावत – शक्तावत सामन्तों के पारस्परिक संघर्षों में राज्य की आर्थिक व्यवस्था को गहरी चोट पहुँचाई थी। इन राजनीतिक परिस्थितियों के फलतः मेवाड़ राज्य द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राजनीतिक संरक्षण प्राप्त कर 1818 ई. की संधि करनी पड़ी थी।

राव –

इस श्रेणी के सामन्तों को सेना सहित राजधानी में उपस्थित रहना पड़ता था। फौजदार, कोटवाल तथा सेना के अधिकारी इस श्रेणी के सरदारों से ही नियुक्त किए जाते रहे थे।[15] राणा अमर सिंह द्वारा इनकी संख्या बत्तीस नियत की गई थी इसलिए उन्हें बत्तीसा सरदार कहा जाता था। यह जागीरें भी राणा की इच्छानुसार घटाई बढ़ाई जा सकती थी किन्तु अध्ययन काल में निम्बाहेड़ा की जागीर टोंक राज्य में लिये जाने के पश्चात् निम्न इकत्तीस जागीर 16वीं शती के अन्त तक विद्यमान रही थी – (1) हमीरगढ़, (2) चावण्ड, (3) भदेसर, (4) बोहेड़ा (5) मूगास, (6) पीपल्या, (7) बांसी, (8) ताणा, (9) रामपुरा, (10) खैराबाद, (11) महुवा, (12) लूगदा, (13) थाणा, (14) जरताणा (घनैया), (15) केलवा (16) बड़ी स्थाऐली, (17) भगवानपुरा, (18) नेतावल, (19) पीलाधर, (20) घंघोरी, (21) बाठरड़ा, (22) सरवाड़, (23) करेड़ा, (24) अमरगढ़, (25) लसाणी, (26) धरियावद, (27) फलीचड़ा, (28) संग्रामगढ़, (29) विजयपुर, (30) बस्सी तथा (31) रूपनगर।

इन जागीरों के सरदारों में शासक वंशज 9 राणावत + 5 चूण्डावत + 4 शक्तावत + 2 सांगावत तथा 1 कान्हावत का योग 21 रहा था। अन्य राजपूत वंशजों में 1 झाला + 2 चौहान + 4 राठौड़ + 1 पंवार और 2 चावड़ा सरदार बत्तीसा में सम्मिलित रहे थे, जिनका की योग 10 था। इस स्थिति के अनुसार राजनीतिक शक्ति के रूप में राणा वंशज बत्तीसा प्रमुख रहे थे। पुनः इसमें चूण्डावत शाखा का अधिक प्रावत्य स्थापित था।

गोल के सरदार –

यह सामन्तों की तृतीय श्रेणी राणा अमर सिंह द्वारा स्थाई सैनिक सेवा प्राप्त करने के लिये बनाई गई थी। यह सामन्त राणा के लिये सर्वाधिक लाभदायक रहे थे। सौलह अथवा बत्तीस सामन्तों के विद्रोह में राणा की सैन्य शक्ति इन पर निर्भर करती थी।[16] उनकी संख्या भी घटाई बढ़ाई जा सकती थी अथवा अच्छी सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप उपरोक्त दोनों श्रेणियों में से किसी में भी प्रतिष्ठित किया जा सकता था। किन्तु इस प्रकार की श्रेणी स्थानान्तर के प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं। इन जागीरदारों को ग्राम या ग्राम की खण्ड भूमी सेवार्थ प्रदान की जाती थी जिनका विस्तृत विवरण प्रस्तुत नहीं कर हम वंशगत स्थिति के अनुसार संख्यात्मक सरदारों को लेंगे।

इस श्रेणी में 50 सरदार चूण्डावत + 38 शक्तावत + 71 राणावत + 7 सांगावत + 13 कान्हावत + 3 लूंगावत + 16 पूरावत + 5 दुलावत + 1 मांजावत + 3 भाकरोत + 2 सोजावत + 2 दुर्गावत सरदार शासक वंशज रहे थे। इन सरदारों की कुल संख्या 211 रही थी। इसके अतिरिक्त 19 चौहान + 4 देवड़ा चौहान + 2 हाड़ा चौहान + 53 राठौड़ + 9 सोलंकी + 5 झाला + 4 पंवार + 1 पड़िलर + 1 यादव (जादव) + 10 भाटी (यादव) सरदार अन्य राजपूत वंशज थे जिनकी संख्या 108 रही थी। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मराठा अतिक्रमण कालीन सैनिक सेवाओं के फलस्वरूप 1 सिन्धी मुसलमान को भी गोल का सरदार बनाया गया था। इस प्रकार अध्ययन काल के अन्तिम समय तक गोल के सरदारों की कुल संख्या 320 थी।[17]

इन सरदारों में सर्वाधिक संख्यात्मक शक्ति धारक चूण्डावत तथा उसकी उपशाखा के सरदार तथा इसके पश्चात् राणा जगतसिंह द्वितीय के वंशज राणावत रहे थे। उपरोक्त सम्पूर्ण स्थिति स्पष्ट करती है कि आलोच्यकाल की प्रमुख सामन्तसत्ता चूण्डावतों के अधीन रही थी। इसी का परिणाम था कि चूण्डावत राज्य अधिकार के प्रमुख उपभोक्ता भी रहे थे।

भौमिया और ग्रासिया –

चौथी श्रेणी के यह जागीरदार सामन्त भी राज्य सैनिक सेवा के लिए बाधित रहते थे, किन्तु इनका अन्तर इनके अधिकारों से नापा जा सकता है। भोमिया सामन्तों में सीमान्त रक्षा करने तथा दुर्गम स्थानों पर राज्य व्यवस्था को बनाए रखने तथा शासक एवं राज्य हेतु अपना बलिदान करने वाले सरदार सम्मिलित थे। इन जागीरदारों में ओगना, पानरवा, जूड़ा, जवास, मादड़ी, पहाड़ा, थाना के प्रमुख ठिकाने थे। ग्रासिया जागीरदारों को रोटी–खर्च के लिए भूमि प्रदान की जाती थी। जो कि सेवा पूर्ण नहीं करने पर अधिग्रहित की जा सकती थी। इस प्रकार एक जागीर पैतृक अधिकारों से युक्त थी। तो दूसरी अस्थाई जमींदारी थी।[18] उपर्युक्त सामन्त मराठों के अतिक्रमण काल में राज्य सुरक्षा करने में प्रथम कार्यकारी रहे थे।

विशिष्ट श्रेणी –

इस श्रेणी को मेवाड़ की लोक भाषा में भाई–बाबा कहा जाता था। इन सामन्तों में भी दो उप श्रेणियाँ रही थी। प्रथम उपश्रेणी में बनेड़ा और शाहपुरा–फूलिया ठिकानों के ठिकानेदार सामन्त तथा द्वितीय उपश्रेणी में बागोर, करजाली, शिवरती, कारोई और बाबलास के ठिकानेदार थे।[19] बनेड़ा और शाहपुरा मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत स्वतन्त्र राज्य रहे थे।

किन्तु साम्राज्य की शक्ति क्षिणावस्था के काल में यहाँ के राजा उदयपुर शासक के भाई–बाधन्व होने के कारण स्वेच्छापूर्वक मेवाड़ राज्य के संरक्षण में आ गए थे। मेवाड़ राज्य की ओर से दोनों ठिकानों के ठिकानेदारों की विशिष्ट सामन्त के रूप में स्वीकार कर प्रथम स्थान बनेड़ा को तथा द्वितीय स्थान शाहपुरा को दिया गया था।

इन ठिकाने के अतिरिक्त डूंगरपुर, बांसवाड़ा तथा देवलिया – प्रतापगढ़ राज्य भी मेवाड़ के सामन्त माने जाते रहे थे।[20] इन राज्यों की प्रतिवर्ष निश्चित खिराज एवं नामित उत्तराधिकारी का टीका–दस्तुर भेजना पड़ता था। किन्तु मराठा उपद्रव काल में यह राशि नियमित नहीं रही थी तथा शक्तिशाली राणाओं द्वारा यदा–कदा अपनी शक्ति द्वारा वसूल किया जाता रहा था। 1818 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इन राज्यों की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करते हुए इनसे चला मैत्री समझौता किया गया था। तब से यह मेवाड़ के बत्तीसी सामन्तों में स्वीकार किए जाने लगे थे।

द्वितीय एवं तृतीय स्तर के सामन्तों में राणा की मंत्रणा परिषद् में बैठने का अधिकार राणा की इच्छा पर निर्भर था। इन्हें केवल धार्मिक एवं व्यवस्थापन मामलों के लिए यदा–कदा आमन्त्रित किया जाता था इसलिए सामन्तशाही के सामाजिक – राजनैतिक स्वरूप में केवल प्रथम स्तर धारक सामन्तों का विशेष महत्व रहा था। जबकि सामाजिक – आर्थिक दृष्टि से तीनों ही प्रकार के स्तरों की भिन्न–भिन्न आर्थिक श्रेणियाँ विद्यमान थी। इन श्रेणियों का विवेचन भूमि–व्यवस्था के अन्तर्गत करेंगे। पद एवं जागीर के अनुरूप दरबारी सम्मानों में इनके प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय वर्ग विद्यमान रहे थे। इन वर्गों के अनुसार ही इनका सम्मान किया जाता था।

4.3 सामन्तिक पद एवं स्थान –

सामन्तों के पद शासकीय सम्बोधनों एवं पद व्यवहारों द्वारा प्रकट होते थे। शासक की 5 पीढ़ी दूरी तक के रक्त सम्बन्धित 'बाबा' कहे जाते थे।[21] एक–दो पीढ़ी दूरी वाले 'काका जी' तथा इसके पश्चात् 'ग्रासिया' कहलाते थे। शासक के कुंवरों को 'राज' कहा जाता था। इन सभी सम्बन्धियों की बैठक शासक – शासन के सामने होती थी। अपने सगे सम्बन्धियों के अतिरिक्त अन्य जाति के लोगों को भी 'काका जी' का पद प्रदान किया जाता था। इसी प्रकार परम्परागत पदों में चूण्डावत सरदारों को रावत, झाला सरदारों को राज राणा शक्तवतों को महाराज और चौहानों को राव कहा जाता था।[22] राणावत सरदारों में बागौर, करजाली और शिवरती के ठाकुर महाराज, बनेड़ा के राजा और शाहपुरा के राजाधिराज कहलाते थे।

सामन्त सरदारों की बैठक के स्थान शासक के दोनों और सीधी पंक्ति में बड़ी ओल तथा लोड़ी ओल (छोटी पंक्ति) में बंटे हुए रहते थे। बड़ी ओल में सरदारों की निश्चित क्रम में बैठक रहती थी।[23] इस बांयी पंक्ति की बैठक की नीचे कुंवरों की ओल होती थी। अतिथि सामन्तों का बैठक स्थान राणा के समक्ष नीचे रहता था। कुंवर और भाई – बान्धव सामन्तों के पीछे द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी के सामन्तों की बैठकें हुआ करती थी। गोल के सरदारों में शासक द्वारा स्वीकृत सरदार के अतिरिक्त अन्य खड़े रहते थे।

4.4 मान सम्मान –

सामन्त स्तरीकरण के अनुसार प्रत्येक वर्ग के लिए इज्ज़त अथवा मान – सम्मान भी वर्गीकृत था। प्रथम श्रेणी में उमरावों को जुहार, ताजीम,

बांह पसाव[24], सोना, मांझा[25], बीड़ा[26], साधारण सम्मान प्राप्त थे। राजपूत सामन्तों के अतिरिक्त वन्य द्वीज जाति के लोगों को भी राणा द्वारा प्रथम श्रेणी के सामन्त नहीं होते हुए भी प्रथम श्रेणी के सम्मान प्रदान किए जाते थे। इसके अतिरिक्त वंश विशेष एवं विशिष्ट श्रेणी के सम्मान महत्वपूर्ण राजनीतिक – आर्थिक सेवा अथवा राज्य कृपा स्वरूप राणाओं द्वारा समय–समय पर प्रदान किये जाते थे, उदाहरणार्थ – बड़ीसादड़ी के राजराणा को सवारी में इत्र और चंवर रखने का अधिकार तथा बनेड़ा राणा हम्मीरसिंह के काल में राणा भीमसिंह द्वारा अब्दूल रहीम बेग को बड़ी पोल तक नक्कारे की सवारी के साथ आने का सम्मान दिया गया था।

द्वितीय श्रेणी के सरदारों को भी जुहार, ताज़ीम, सोना अथवा चाँदी को पैरों में पहनने का मान, मांझा और बीड़ा के सम्मान और तृतीय श्रेणी को केवल बड़ी पोल में बैठक तथा पान के बीड़े की इज्जत दी जाती थी। विशिष्ट सैन्य सेवा प्रदर्शित करने वाले सामन्तों को अमर बलेणा घोड़ा एवं सोने की छड़ी और घोटा रखने का मान दिया जाता था।

इसी प्रकार राज्य के प्रधान को भी प्रथम श्रेणी के सम्मान स्वरूप साधारणतः सोने की दवात, पट्टा बही, सुनहरी पट्टे का फगा, मोतियों की बंठी, सिरपेच, मोती चोपड़ा, हाथी, स्वर्ण पालकी सहित अमर बलेगा, सोने चांदी की छड़ी, घोटे, पांवों में सोने के तोड़े, नाव में बैठने की छतरी के मोड़े, पीछे की बैठक आदि प्रदान किये जाते रहे थे।[27]

धर्मार्थ जागीर के जागीरदारों में प्रथम श्रेणी के पुजारी, महन्त आदि को राणा के सामने गद्दी पर बैठने का सम्मान दिया जाता था। राणा उनके सम्मुख दोवटी (एक प्रकार का आसन) पर बैठने के पूर्व डण्डोत (दण्डवत प्रणाम) करके भेंट देते थे। राणा की उपस्थिति में भी इस श्रेणी को चंवर

का सम्मान प्रदान किया हुआ था। द्वितीय श्रेणी के पुजारी को बैठने के लिए दरबार में 'वानात का आसन' मिलता था एवं राणा द्वारा उन्हें ताज़ीम दी जाती थी। तृतीय श्रेणी वाले राणा को आशीर्वाद देकर फर्श पर बैठते थे। इसी प्रकार राज्य अधीनस्थ उच्च सेवादारों व जागीरदारों में भी प्रथम श्रेणी वालों को पैरों में स्वर्णाभूषण, मांझा, छड़ी आदि, द्वितीय श्रेणी को केवल ताज़ीम और छड़ी तथा तृतीय श्रेणी को दरबार में बैठक तथा राणा के हाथ से पान के बीड़े का सम्मान दिया जाता था।

4.5 सामन्त विरूद्ध –

दरबार में प्रवेश करने से पूर्व प्रत्येक व्यक्ति को ड्योढ़ीदार से स्वीकृति लेनी होती थी। ड्योढ़ीदार व्यक्ति की श्रेणी तथा उसकी पोशाक आदि की जाँच करने के पश्चात् प्रवेशी व्यक्ति की ओर से दरबार के दरोगा को उस व्यक्ति के प्रवेश के लिए निवेदन करता था। प्रवेश स्वीकृति के रूप में पान का बीड़ा दिया जाता था। दरबार में प्रवेश करते समय श्रेणी एवं पद के अनुसार चौबदार सलामती (जुहार) बोलता था, उदाहरणार्थ – 'महाराजा सलामत रावत/राणा/राव सिंह जी को मुजरो लीजो।' तत्पश्चात् सामन्तों के चारण उनके प्रशस्तियाँ बोलते थे। यह सामन्त विरूद्ध प्रत्येक वंश और पद के लिए अलग–अलग रहे थे।[28]

उदाहरणार्थ –

1) चुण्डावतों के – रावता पट रावत, दस सहस मेवाड़ रा मड़ सेमड़

2) शक्तावतों के – दूना दातार, चौगुना जुफ़ार, ...

3) झालों के – .....

4) चौहानों के – .....

5) राठौड़ों के – .....

6) पंवारों के – .....

7) भाटी और सोलंकियों के – .....

8) राणावतों व राणा बान्धवों के – .....

9) पंचोली, कायस्थ जो कि दीवान इत्यादि रहे थे या होते थे – वीर गद्दी रथपाल

10) मेहता, कोठारी तथा अन्य महाजन – वैश्य (जो कि मेवाड़ राज्य के उच्चाधिकारी होते थे) – .....

उपरोक्त विरूद्धों से उनके वंश प्रशस्ति नाम के साथ–साथ दरबार में जाते–जाते उसकी श्रेणी एवं पद की स्थिति शासक को स्पष्ट हो जाती थी। सामन्त द्वारा शासक के सम्मुख पहुँचने पर झुक–झुक कर खम्मा, खम्मागणी बोलने के बाद अपना स्थान ग्रहण करता था। विभिन्न जातियों द्वारा राणा को विभिन्न रूपों से सम्बोधित किया जाता था – राजपूत लोग उन्हें अन्नदाता कहते थे, ब्राह्मण गऊ प्रतिपालक, तो महाजन – वैश्य हुजूर कहते थे। इसी क्रम में राजकीय चारणों द्वारा राणा की वीरूदावली दो प्रकार की बोलते थे –

1) राणा की व्यस्तता के समय में दो पंक्ति का विरूद्ध – 'हिन्दूस्तान रा छत्र, हिन्दू वां रा सूरज महाराणा ..... के पुत्र महाराणा ..... अन्नदाता पृथ्वीनाथ रो छत्र कायम'

2) कलंकिया राय केदार, पापिया राय प्रयाग। हथियांरा राय वाराणसी, मधावन राय राजान गंगा।। सुरताण ग्रहण मोखण, सुरताण मान मर्दन।। सुरताण सरगाई साधार, सुरताण दल जैतवार।। हिन्दुवां रा दिनेस, एकलिंग रा अवतार, पृथ्वीनाथ रो छत्र कायम

प्रथम श्रेणी के सरदारों से वार्तालाप के समय राणा हाथ जोड़ कर बात करते थे, उसी प्रकार सरदार–सामन्त भी राणा से हाथ जोड़ कर बात करते थे। ताज़ीमी सामन्त की नजर (भेंट) राणा खड़े हो कर स्वयं लेते थे जबकि अन्य की नजरें दरबार का दरोगा राणा की स्वीकृति से लेता था। बनेड़ा एवं शाहपुरा के सामन्तों के दरबार में आने से पूर्व राणा इन्हें लेने के लिए क्रमशः चम्पाबाग तथा हजारेश्वर के मन्दिर तक जाता था। यहाँ आगन्तुक सामन्तों द्वारा राणा को एक स्वर्ण मुहर एवं पाँच रूपया 'नजर' किया जाता था। सामन्तों के साथ यदि कुंवर होते तो वह भी नजर करते थे, किन्तु राणा द्वारा उसमें अपनी ओर से दुगुना मिलाकर कुंवरों को लौटा दिया जाता था।[29] तत्पश्चात् बांहपसाव कर औपचारिकता का निर्वाह करते थे। दूसरे दिन सामन्त अपनी हवेलियों से अपने–अपने पद, श्रेणी तथा प्राप्त मान सम्मानों के अनुसार सवारी के साथ महल में जाते थे जहाँ उपरोक्त दरबारी प्रविष्टियों की औपचारिकता के बाद दरबार में प्रवेश कर अपना स्थान ग्रहण करते थे। दोनों सामन्त जब तक उदयपुर में रहते थे तब तक उनकी जागीर का घड़ी–घंटा बजाने का अधिकार उन्हें प्रदान किया हुआ था।[30]

4.6 मर्यादाऐं और कर्त्तव्य –

सामन्तों के मान–सम्मानों से उनकी सामाजिक, राजनीतिक प्रतिष्ठा और प्रभाव दिखाई देता था, किन्तु इसके साथ उन्हें कई राजनीतिक,

आर्थिक मर्यादाओं का निर्वाह करना पड़ता था। इन मर्यादाओं में शासक द्वारा प्रेषित निमंत्रण ले जाने वाले अधिकारियों एवं सेवकों का सामन्त द्वारा सत्कार करना तथा इन्हें विदाई पर ईनाम और सिरोपाव देना, सामन्त द्वारा शादी विवाह का राणा से परामर्श लेना, उनको घर पर अथिति करना, आवागमन पर उनके सम्पूर्ण खर्च का निर्वाह करना आदि सामान्य मर्यादाऐं रही थी। इनके अतिरिक्त अन्य सामाजिक मर्यादाओं में नजराना, नेक तथा नूँत की परम्परा का पालन करना मुख्य था।

4.7 नजराना –

यह परम्परा यहाँ राणा की शक्ति का प्रतीक रही थी। यहाँ सामन्तों की राजभक्ति का परिचय थी।[31] एक प्रकार से राणा और सामन्तों के सामाजिक – आर्थिक सम्बन्धों को बनाए रखने में यह प्रक्रिया तत्कालीन सामन्तशाही का मुख्य आधार रही थी। सामन्त की मृत्यु के पश्चात् नवीन उत्तराधिकार की पुष्टि हेतु नवीन सामन्तों द्वारा राणा को नजराना देना पड़ता था।[32] नजराना दो प्रकार से दिया जाता था – कैद नजराना तथा तलवार बंधाई नजराना। कैद–नजराना देने वाले सामन्त के उत्तराधिकारी की पुष्टि के पूर्व उसकी भोम (पैतृक) जागीर को छोड़ कर शेष जागीर पर राज्य का प्रत्यक्ष अधिकार हो जाता था। इस प्रथा को "जप्ती" कहा जाता था। शोक–निवृति के पश्चात् नवीन सामन्त, राणा के सम्मुख उपस्थित होकर अपनी जागीर की एक वर्ष की आय जिसे कि कैद के रूपये कहा जाता था राणा को भेंट करता था। तब राणा आम दरबार में अमर बेलेणा घोड़ा, सिरोपाव, दुशाला और अन्य बहुमुल्य दस्तुर प्रदान कर मान सम्मान के साथ उसे जागीर का अधिकार प्रदान कर सामन्त की कमर में एक तलवार बांधता था। इस प्रथा को खड़ग–बन्दी या तलवार–बन्दी कहते थे।[33] इस प्रक्रिया के पश्चात् जागीर से जप्ती समाप्त कर दी जाती थी।

बनेड़ा, शाहपुरा, सलूम्बर, देवगढ़, आमेट, गोगुन्दा तलवार–बंधाई नजराना और शेष कैद नजराना देते थे। बनेड़ा एवं सलूम्बर को इस परम्परा में विशेष छूट प्राप्त रही थी। बनेड़ा के सामन्त के लिये राणा द्वारा पूर्व में ही तलवार भेज दी जाती थी। तत्पश्चात् सामन्त राजधानी में पहुँच कर नजराना देता था। शाहपुरा के राणा की तलवार बंधाई एक स्वतन्त्र राज्य होने के कारण मुगल–सम्राट तथा बाद में ब्रिटिश–भारत सरकार द्वारा होती थी। अतः काछौला जागीर के सामन्त की पूर्ति के अनुसार यह इसका नजराना भेट देता था और कभी भी उपस्थित हो पगड़ी–बंधाई का निर्वाह कर लेता था। सलूम्बर रावत नजराने से मुक्त था। उसे लेने के लिये राणा अथवा राजकुमार को सलूम्बर जागीर में जाना पड़ता था वहां खड्ग–बन्दी का दस्तुर करने के पश्चात् उसे राजधानी में लेकर आता था।[34] नजरानों की राशि का प्रतिशत सभी सामन्तों पर 18वीं शती तक निश्चित नहीं था किन्तु 1854 ई. में शासक–सामन्त समझौते के पश्चात् एक वर्ष की आय के स्थान पर जागीर आय का तीन बटा चार भाग निश्चित कर दिया गया था। जिन सामन्तों से कैद नहीं ली जाती थी उनसे 80 रूपया प्रति हजार वार्षिक आय लिया जाना प्रारम्भ किया गया था।[35]

4.8 आर्थिक सहायता –

यह परम्परा भी सामन्त मर्यादाओं और अग्रज के प्रति सामाजिक – आर्थिक सम्बन्धों की द्योतक रही थी। इन सम्बन्धों में प्रजा द्वारा प्रदत्त वार्षिक सहायता[36] में स्वामीभक्ति की भावना निहित रहती थी। राणा के राज्यारोहण पर सामन्तों द्वारा उपहार–राणा अथवा उसके सम्बन्धियों के विवाह पर सामन्त और प्रजा की भेंट, जागीरदार की तलवार–बन्दी पर प्रजा द्वारा भेंट चढ़ाना, आदि सामाजिक कर्त्तव्य रहे थे। दुःख–सुख में

एक–दूसरे के जागीरदार बने रहने की सामुदायिक भावना के फलस्वरूप राणा द्वारा जागीरदार सामन्तों की जागीरदारों द्वारा राणा की, प्रजा द्वारा राणा एवं सामन्तों की तथा सामन्तों द्वारा प्रजा की पारस्परिक आर्थिक – सहायता करना सामन्तशाही जीवन है। सामाजिक–आर्थिक आदर्शों का स्वरूप निश्चित करता था, किन्तु मराठा अतिक्रमण काल में सामन्त – आदर्श का यह प्रतिदर्शन धुमिल होने लगा था। सामन्त और प्रजा के नैतिक कर्त्तव्यों पर आधिकारिक शोषण की भावना प्रारम्भ हो गई थी। परिणामतः यह आर्थिक सहायता शक्ति द्वारा अर्जित की जाने वाली लागत बन गई थी। 19वीं शताब्दी में विभिन्न लागतों का नियमन कर, राणा के राज्यारोहण, उसके व उसके उत्तराधिकारी के प्रथम विवाह पर प्रथम श्रेणी के सामन्तों से 500 रूपया तथा दो घोड़े तथा अन्य श्रेणी के सामन्तों से उनकी आय का 2 प्रतिशत लिया जाना प्रारम्भ किया गया था।[37] इसी प्रकार राणा की बहिन–बेटियों के विवाह पर प्रति रूपया आय पर 2 आना 2 पैसे तथा राणा की तीर्थ यात्रा पर सामन्तों की कुल आय का 8 प्रतिशत या प्रति रूपया 1 आना 1 पैसा नेग निश्चित किया गया था।

4.9 जागीर वृत्ति –

मेवाड़ राज्य में सेवा तथा वेतन के स्थान पर भूमि प्रदान करने का प्रचलन प्राचीन काल से चला आ रहा था। प्रासाद निर्माता, चित्रकार, चिकित्सक, दूत, अधिकारी, मंत्री एवं सामन्त सभी वेतन के स्थान पर भूमि प्राप्त करना सम्मान समझते थे। यह भूमि गृहिता सामन्त तथा अन्य सरदार की जागीर कहलाती थी। सामन्तों को राज्य की भूमि का जो भाग दिया जाता था उसके बदले में उनको देश रक्षार्थ शत्रुओं से युद्ध करना पड़ता था।[38] इसके साथ ही अपने क्षेत्र में शान्ति और व्यवस्थाऐं बनाए रखने के अतिरिक्त शासक के आमन्त्रण पर राजधानी में उपस्थित होकर

व्यक्तिगत सेवा करनी पड़ती थी। यदि सामन्त प्रदत्त जागीर के प्रति कर्त्तव्यों के पालन करने में असमर्थ हो जाते अथवा राज्य द्रोह द्वारा देश और स्वामीभक्ति के लौकिक आदर्श के विरोध में कार्य करने लग जाते तो राणा का अधिकार होता था कि उसके कर्त्तव्यच्युत सामन्तों से उनकी जागीरी छिनती। मराठा अतिक्रमण काल में इस व्यवस्था के अनियन्त्रण ने सामन्त – उपद्रवों को बढ़ावा दिया था। किन्तु कोई भी जागीरी छिनी नहीं गई थी। परिणामतः 19वीं शताब्दी के शान्तिकाल में ब्रिटिश संरक्षण के पश्चात् इस व्यवस्था का व्यवस्थापन यथावत किए जाने का प्रयत्न निरन्तर चलता रहा। सलुम्बर जागीरदार सामन्त के अतिरिक्त आलोच्यकाल के अंतिम समय तक सभी सामन्त राज्य नियन्त्रण और स्वामीभक्त हो गए थे।

4.10 राज्य मंत्रणा –

प्रत्येक सामन्त के लिए अपने स्वामी राणा को परामर्श देने अथवा लेने का कर्त्तव्य का पालन करना आवश्यक रहा था। राज्य में किसी भी प्रकार के गम्भीर, सामाजिक – राजनैतिक एवं आर्थिक विषयों पर राणा द्वारा सामन्तों को परामर्श के लिए बुलाया जाता था। इनके परामर्श के बगैर अथवा निर्णयों के विरूद्ध राणा को कोई भी कार्य – सम्पादन का अधिकार नहीं था। इसी प्रकार बगैर राणा की सहमती और राणा के सामन्त भी स्वतन्त्र नहीं थे। इस प्रकार पारस्परिक – मंत्रणा की व्यवस्था मेवाड़ सामन्तशाही की प्रमुख विशेषता रही थी। इस व्यवस्था का परिपालन सामन्त क्षेत्राधीन उप–सामन्तों एवं जागीर प्रथा के मध्य भी किया जाता था।[39] इसी व्यवस्था का परिणाम था कि कोई भी सामन्त राणा और अपने उप–सामन्तों के परामर्श और स्वीकृति के बगैर जागीर का हस्तान्तरण नहीं कर सकता था। धर्म के निमित्त कुछ बातों में यह व्यवस्था लागू नहीं होती थी। कोई भी सामन्त अपनी जागीर से धार्मिक अनुदान देने में तथा मूल

(पैतृक) अधिकार की भूमि से भाई–भांट का हिस्सा देने में परामर्श का उत्तरदायी नहीं था। इसका प्रतिफल शनैः शनैः यह हुआ कि सामाजिक जागीर में सामन्त शक्ति का प्रभाव पड़ने के साथ–साथ जागीर विकेन्द्रीकरण में राज्य और जागीर के छोटे–छोटे टुकड़े बनाना प्रारम्भ कर दिया और इसी कारण 19वीं शताब्दी के अन्त तक जागीरों में भी असंख्य भूम बन गई थी जिन्हें आर्थिक संकट के साथ बंधक रखा जाने लगा था।[40]

पुत्रहीन सामन्त के उत्तराधिकार के निर्णय का उल्लेख परिवार, विवाह एवं प्रथा के प्रकरण में किया गया है। इसके लिए सामाजिक, राजनैतिक पुष्टिकरण कराना आवश्यक होता था। गोद लिया गया पुत्र भी ओरस पुत्र के अधिकारों का उपभोग करता था। अल्प वयस्क सामन्त की जागीर का प्रबन्ध करना राणा का कर्त्तव्य रहता था। यद्यपि इसे सामन्त का संरक्षक उसकी माता को माना जाता था किन्तु माता के स्थान पर अन्य को संरक्षण प्रदान किए जाने का कर्नल टॉड का उल्लेख आलोच्यकाल में प्रमाणित नहीं होता है।

प्रत्येक सामन्त को वैवाहिक कार्यों के सम्बन्ध में राणा के साथ मंत्रणा करना आवश्यक था। यह परम्परा राणा के प्रति सामाजिक शिष्टता, सद्भावना का परिचय थी। यह परामर्श इसलिए भी आवश्यक था कि राणा का वंश शुद्धता की दृष्टि से सर्वोच्च था और वह अपने सामन्तों की रक्त दृढ़ता को महत्व देता था। अतः जातिगत वैवाहिक सम्बन्धों में रक्त शुद्धता का निर्णय राणा द्वारा किया जाता था। किन्तु 19वीं शताब्दी में इसका स्वरूप शासकीय नियन्त्रण में प्रतिस्थापित होने लग गया था। इस परामर्श पर राणा की स्वीकृति होने के पश्चात् सामन्त के सम्मान में मूल्यवान वस्तुऐं भेंट में दी जाती थी।

4.11 सैनिक कार्य –

18वीं शती के उत्तरार्द्ध में सामन्तों की सभी श्रेणियों की आर्थिक स्थिति क्रमानुसार – प्रथम श्रेणी के सामन्त को प्रदत्त जागीर की वार्षिक आय 50 हजार रू. से 1 लाख रू., द्वितीय श्रेणी के सामन्त को प्रदत्त जागीर की वार्षिक आय 5 हजार से 50 हजार रूपया तथा तृतीय श्रेणी के सामन्त को प्रदत्त जागीर की वार्षिक आय 5 हजार रूपया रही थी। इस जागीर वृत्ति के सेवार्थ प्रत्येक सामन्त को राणा की सेवा में 1 हजार रूपया वार्षिक आय पर कम से कम 2 व साधारणतः 3 सैनिक सवारों को रखना पड़ता था। 19वीं शताब्दी में सामन्तों की सैनिक आवश्यकताओं का महत्व नहीं रह गया था अतः आन्तरिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए सामन्तों की सैनिक–सेवा आधी कर दी गई थी।[41] सैनिक सेवा का यह मापदण्ड 'रेख' के आधार पर आधारित रहा था। मेवाड़ राज्य में रेख का अभिप्रायः जागीर की वार्षिक आय पर राज्य निर्धारित सैन्य शुल्क रहा था। यह रेख प्रत्येक राणा द्वारा निर्धारित की जाती रही थी। भीमसिंह कालीन 'भीम सी रेख' के अभिलेखों से मराठा अतिक्रमण से उत्पन्न व्यवस्था का पता लगता है, जिसके अनुसार कहीं गांव की आय से रेख अधिक थी तो कहीं रेख से अधिक गांव की आय उल्लेखित की गई है।[42] इसी कारण 1850 ई. तक राणा और सामन्तों के मध्य सैन्य–सेवा एवं चाकरी का विवाद चलता रहा था। अन्ततः 1850 ई. में महाराणा स्वरूप सिंह ने सभी सामन्तों को, एकलिंग की पवित्र सौगन्ध की प्रार्थना करते हुए, अपने–अपने जागीर–गांवों की, वास्तविक आय को उल्लेखित करने के लिए कहा था। तब से प्रत्येक जागीर पट्टों में गांव, उपज (पैदावार), राशि, पिछले वर्ण की उपज राशि तथा उस पर प्रति रूपया 5 आना की छटूंद राशि तथा प्रति एक हजार रूपया आय पर दो सवार चार पैदल के स्थान पर एक सवार

और दो पैदल सैनिक सेवा का उल्लेख किया जाने लगा था। उन सैनिकों के साथ सामन्त के निर्देशानुसार तीन मास, छः मास, नौ मास तथा बारह मास की चाकरी के रूप में राणा के महलों में सेवा करनी पड़ती थी।[43]

सैनिक सेवा के रूप में राष्ट्र प्रेम एवं स्वामीभक्ति से ओत–प्रोत परम्परा का पतन ब्रिटिश संरक्षण काल में हो गया था। जो सामन्त 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक शासक के सहयोगी और अनुशासक थे, उत्तरार्द्ध छटूंद एवं खिराज नीति की आर्थिक व्यवस्थाओं के परिणामतः नौकर की स्थिति में प्रति स्थापित कर दिये गए थे। यही कारण था कि 19वीं शताब्दी के शान्तिकाल में सामन्तशाही जीवन विद्रोह से पूर्ण प्राचीन परम्पराओं को पुनः प्रचलित करना चाहता था। इस जीवन का नेतृत्व, आलोच्यकाल के अन्तिम समय तक, सलुम्बर के सामन्त करते रहे थे।

4.12 राज्य नियंत्रण –

सामन्तों की स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति के दमन हेतु परम्परागत सामन्त नियंत्रण व्यवस्था आलोच्यकाल में विद्यमान रही थी। इस नियंत्रण में रोजाना, धौंस तथा दस्तक की प्रक्रियाऐं महत्वपूर्ण रही थी।

रोजाना –

सामन्तों के अपराधी होने पर, राणा की आज्ञा का अनादर करने पर अथवा दरबार में देर से उपस्थित होने पर राज्य द्वारा एक अधिकारी के अधीन अश्वरोही और पैदल सैनिकों का दल सामन्त के ठीकाने पर जाता था। वह अधिकारी राज्याज्ञा दिखला कर सामन्त से आर्थिक दण्ड के रूप में रसद मांगता था। यह रसद की मांग 'रोजाना' कहलाती थी।[44] सामन्त जब तक राज्याज्ञा का पालन नहीं करता तब तक आगन्तुक दल सामन्त के यहां से हटता नहीं था। इस प्रक्रिया को 'धारणा' कहा जाता था। राज्य

मांग की पूर्ति के पश्चात् धरणा कालीन दैनिक भत्ता एवं आने–जाने खर्च प्राप्त कर यह सैन्य दल राजधानी लौट जाता था।[45]

धौंस एवं दस्तक –

यह प्रक्रिया भी राज्य की आज्ञा के प्रति सामन्त द्वारा अवहेलना किए जाने पर क्रियान्वित होती थी। मूलतः इसका प्रचलन 19वीं शताब्दी की देन था। ब्रिटिश संरक्षण में आंग्ल–भारतीय सरकार में सामन्तों की शक्ति को देखने तथा राणा की शक्ति को निरंकुश बनाने के लिए, सामन्तों की छोटी से छोटी त्रुटि पर, बगैर सामन्त पंचायत निर्णय के, ठीकानों और जागीर पर सैन्य दल भेजना प्रारंभ किया था। यह सैन्यदल येन केन प्रकारेण राज्याज्ञा पालन कराने हेतु दबाव डालता था। यह दबाव धौंस कहलाता था। राज्याज्ञा की पूर्ति हेतु दबाव पर किए गए व्यय की क्षतिपूर्ति दस्तक कहलाती थी।

4.13 सामन्तों की स्वतन्त्रता –

सामन्त के क्षेत्र में राणा द्वारा हस्तक्षेप करना परम्परा विरूद्ध माना जाता था। इस प्रकार सामन्त को अपने क्षेत्र में व्यवस्था के व्यवस्थापन में स्वतन्त्रता रहती थी।[46] सामन्त क्षेत्राधीन व्यवस्था को बनाये रखने के लिए जागीर सामन्तीकरण प्रणाली कार्य करती थी। प्रत्येक सामन्त के अधीन जमीन अथवा गांव के सरदार, जागीर के कर्मचारी होते थे। यह संगठन जागीर के स्वामी – सामन्त को सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक रूप में जागीर व्यवस्था एवं राणा के प्रति उत्तरादायित्वों पर परामर्श देता था। यद्यपि राणा की मान–मर्यादाओं के प्रति इस अनुसामन्त संगठन में आदर रहता था किन्तु बगैर इसके परामर्श सामन्त कोई कार्य के लिए स्वतन्त्र

नहीं होता था। इस संगठन का स्वरूप राणा के सामन्त–संगठन की अनुकृति रहा था।

जागीर के सरदारों का संगठन –

सामन्तशाही में राणा व सामन्तों के पारस्परिक कर्त्तव्य तथा सहयोग सम्बन्धों का जितना महत्त्व था, उतना ही महत्त्व सामन्त और उनके सरदारों के कर्त्तव्यों और सम्बन्धों का रहा था। सरदार लोग सामन्तों के दरबार के विशिष्ट व्यक्ति लेते थे। इनके जीवन के कार्य सामन्तों के कार्यों के साथ जुड़े रहते थे। शिकार के लिए जाना, सामन्त दरबार में उपस्थित होना, युद्ध में स्वामी–सामन्तों की सहायता करना, जागीर राजस्व को व्यवस्थापन करना आदि कार्य मुख्य रहे थे। सरदार मुख्यतः सामन्त – दरबार से सम्बन्धित होते थे। अतः वहाँ उनकी उपस्थिति अनिवार्य होती थी। उपस्थिति नहीं होने के लिए सरदारों को नियमानुसार सामन्तों से अवकाश उपभोग की आज्ञा लेनी पड़ती थी। इस प्रकार यह प्रणाली राज्य में उपसामन्तिक व्यवस्था का कार्य करती थी। राज्य जागीर का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व इन सरदारों पर निर्भर रहता था।

सामन्त – स्वतन्त्रता को स्पष्ट करने वाले प्रतिकों में उसके निवास स्थानों में बने हुए शीशमहल, बाड़ीमहल, जिन मन्दिर, दरीशाला, दरबार भवन वैसे ही बने होते थे जैसे कि राणा के महलों में बने शीशमहल, दरीखाने। सामन्त भी अपने सरदारों के साथ दरबार लगाता और नजराने लेता था। जागीर के सरदारों की भी तीन श्रेणियों में भाई–बांट सरदार, मयादी सरदार तथा वंशानुगत सरदार होते थे। सामन्त इन्हें मान–सम्मान तथा पद–प्रतिष्ठा प्रदान करता था। वह अपने स्वामी सामन्त के प्रति स्वामी धर्म एवं सामुदायिक कर्त्तव्य का पालन करने को तत्पर रहते थे।[47]

उपरोक्त सामन्तशाही विवेचन स्पष्ट करता है कि राज्य की सामन्त व्यवस्था, राणा और उसके कुल के लोगों के मध्य सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक सम्बन्धों पर आधारित राज्य व्यवस्था को चलाने के लिए पारस्परिक साझेदारी थी। इन साझेदारी में पैतृक अधिकार, देशभक्ति, स्वामीधर्म तथा सामाजिक–आर्थिक कर्त्तव्य निहीत रहे थे। यह सामन्तवादी पद्धति समाज के सभी तत्वों पर छाई हुई थी। इसका स्वरूप आलोच्यकाल में विकेन्द्रीकृत रहा था, परिवार के मुखियाओं, जाति पंचायतों, ग्राम पंचायतों, जजमानी – जागीर व्यवस्थाओं आदि में प्रचलित परामर्श, नियमाचरण तथा इनके प्रति लोकादर, जाति शुद्धता, वंशानुगत पद स्थितियाँ एवं संयुक्त परिवार प्रणाली में सामाजिक, राजनीतिक प्रतिदर्शों पर राजपूत जाति की सामन्तिक प्रभावों का परिलक्षण यथा स्थान आलोच्य – निबन्ध में दिखाई देता है। इन्हीं आधारों पर कहा जा सकता है कि मेवाड़ की सामन्तशाही में 'हम' की भावना व्याप्त रही थी जबकि यूरोप की सामन्तशाही में मात्र 'मैं' प्रचलित रहा था। राज्य में सामन्तशाही सामाजिक धर्म पर आधारित रही थी। वहाँ यूरोप में सामाजिक स्वार्थ पर। दोनों पद्धतियों की व्यवहारिक तुलना परमात्मा शरण द्वारा करते हुए लिखा गया है कि यूरोप में लोक कानूनों का स्थान व्यक्तिगत कानूनों में, लोक कर्त्तव्य का स्थान व्यक्तिगत कर्त्तव्य ने तथा राजा की व्यवस्थापन शक्ति स्वेच्छाचारी सामन्तों द्वारा अधिग्रहित कर राजा को निर्बल बना दिया था परिणामतः यूरोप की सामन्तिक व्यवस्था शीघ्र नष्ट हो गई किन्तु राजपूत सामन्तशाही व्यवस्था में जागीरदार शक्तिशाली नहीं हुए थे।[48] यद्यपि मराठा अतिक्रमण काल में व्यवस्था उत्पन्न हुई थी फिर भी राणा के प्रति स्वामी धर्म तथा कुल–कर्त्तव्य का आदर्श निरन्तर बना रहा था।

यूरोप में भूमि का स्वामी शासक माना जाता था, किन्तु मेवाड़ के शासक भूमि का भाग लेने का अधिकारी रहा था। मूल में जमीन जोतने वाला भूमि स्वामी माना जाता था। अतः मेवाड़ की यह व्यवस्था आर्थिक नियंत्रण के स्थान पर आर्थिक सहयोग पर आधारित रही थी।

मेवाड़ में प्रशासनिक एवं न्यायी शक्तियाँ ग्राम्य पंचायतों द्वारा उपयोग की जाती थी। उनकी परम्पराओं और आदर्शों में राज्य के सामन्तों का हस्तक्षेप नहीं होता था जबकि यूरोप में यह शक्तियाँ केन्द्र में केन्द्रित रही थी। मूलतः मेवाड़ में सामन्तशाही लोक भय के कारण स्वेच्छाचारी नहीं बन पाई थी।

यूरोप में सैन्य सहायता मात्र सेवा थी जबकि मेवाड़ में यह कर्त्तव्य और बलिदान की भावना से प्रेरित थी। इसी प्रकार यूरोप की तानाशाह सामन्तशाही का पतन हो रहा था तब भी यहाँ सामन्त पद्धति जीवित रही इसके पृष्ठ में राज्य की सामन्तिक पद्धति, राजनीतिक आवश्यकता नहीं होकर सामाजिक और नैतिक प्रभाव शक्ति से प्रोत राष्ट्र सेवा के प्रति समर्पण था।

पाद टिप्पणियाँ –

1) मैक्स वेवर, द थ्यौरी ऑफीशियल एण्ड इकोनोमिक ऑर्गेनाईजेशन (1968), पृ. 373–381

2) जोसेफ आर. स्ट्रेयर एवं कोलबोर्न, फ्यूडलिज्म इन हिस्ट्री (1956), पृ. 27–30

3) एनाल्स, भाग 1, पृ. 133–150

4) सर एल्फ्रेड लायल एशियाटिक स्टडीज, रिलीजियन्स एण्ड सोशीयल (1882), पृ. 207–219

5) गोपाल व्यास – पूर्व मध्यकालीन मेवाड़, एम. ए. (इति.) परीक्षा हेतु प्रस्तुत शो. नि., पृ. 15

6) वी. वि. पृ. 76, 1225, सहीवाला, भाग 1, पृ. 7

7) उ. ई. भा. 1, पृ. 32, गोपीनाथ शर्मा – राज. इति. भाग 1, पृ. 502

8) एस. सी. दत्त – राजपूत पोलीटी (दी गार्जियन, अगस्त 22, 1931 से उद्धृत), वी. वि. पृ. 297, 305–9, उ. ई. भा. 1, पृ. 243, 259–70

9) गोपीनाथ शर्मा – राजस्थान का इतिहास, भाग 1, पृ. 476

10) यह कार्य राणा अमर सिंह प्रथम के शासनकाल (1597–1620 ई.) के पश्चात् सम्पन्न हुआ था, जी. एन. शर्मा, मेवाड़ एण्ड दी मुगल्स एम्परर्स, पृ. 122–123

11) एनाल्स, भा. 1, पृ. 568, वी. वि. पृ. 138–141 मेवाड़ राज्य प्रबन्ध, पृ. 12–13

12) ट्रीटीज एंगेजमेण्ट, खण्ड 3, पृ. 49–54, धारा 17, वी. वि., पृ. 1919, 2057–58, उ. ई. भा. 2, पृ. 736

13) सही वाला, भा. 1, पृ. 13–14, उ. ई. भा. पृ. 166

14) एनाल्स, भा. 1, पृ. 167, वी. वि. पृ. 138–141

15) के. आर. शास्त्री, इण्डीयन स्टेट्स, पृ. 19

16) एनाल्स, भा. 1, पृ. 117, गहलोत, रा. ई., भा. 1, पृ. 343, उ. ई. भा. 2, पृ. 942–973

17) एनाल्स, भा. 1, पृ. 167, मेवाड़ का राज्य प्रबन्ध, पृ. 13–14

18) गहलोत – रा. ई. भा. 1, पृ. 343–349

19) माधु लाल व्यास कलेक्शन – रजि. नं. 6 पृ. 52, जमनेश ओझा – मेवाड़ का इतिहास (अ. प्र.), पृ. 532

20) एनाल्स, भा. 1, पृ. 167–168, गहलोत – रा. ई. भा. 1, पृ. 323 नारायण श्यामराव चिताम्बरे बनेड़ा राज्य का इतिहास, पृ. 273

21) वि. वि. पृ. 730, उ. ई. भा. 2, पृ. 596, 684

22) वी. वि., पृ. 1537, सही वाला भा. 2, पृ. 26

23) क्रमानुसार पहला स्थान – बड़ी सादड़ी, दूसरा स्थान – बेदला, तीसरा स्थान – कोठारिया, चौथा स्थान – सलूम्बर, पांचवा स्थान – बिजौलियां, छठा स्थान – देवगढ़ आदि का रहा था, पुरोहित देवनाथ डायरी (अ. प्र.), वी. वि. पृ. 138–141

24) बांह पसाव का अर्थ छाती से लगाना या गले मिलने से है।

25) मांझा पगड़ी में लगाने का कीमती डोरा था। यह रूपहरी और सुनहरी दो प्रकार का होता था।

26) बीड़े से तात्पर्य पान से है जो राणा द्वारा स्वयं हाथ से दिया जाता था, इसमें भी प्रथम, द्वितीय क्रम रहता था, बनेड़ा राज्य का इतिहास, पृ. 152

27) कोठारी कलेक्शन, प्रधानगी मुरजाद के कागज़ात, कोठारी, पृ. 15

28) वी. वि. पृ. 141 एवं 142

29) एनाल्स भा. 1, पृ. 271 एवं 284, शोध पत्रिका (सित. 1959), पृ. 65–68

30) पुरोहित देवनाथ डायरी, बनेड़ा राज्य का इतिहास, पृ. 273–274

31) शाहपुरा राज्य की ख्यात, उपरोक्त, पृ. 40, बनेड़ा राज्य का इतिहास, उपरोक्त, पृ. 275

32) एनाल्स भाग 1 पृ. 184

33) उपरोक्त, इन्डीयन कल्चर खण्ड 13 भाग 2 पृ. 76

34) एनाल्स भाग 1 पृ. 185, देवनाथ पुरोहित डायरी ह.लि. बही कैद–नजराना– उपरोक्त बनेड़ा राज्य का इतिहास

35) वी. वि. पृ. 2001–2006, 2075, उ. ई. भा. 2, पृ. 793

36) ट्रीटीज, एंगेजमेण्ट, खण्ड 3, पृ. 30, नकल बही वि. सं. 1901 बस्ता 1 बनेड़ा राज्य का इतिहास, पृ. 159

37) एनाल्स भाग 1 पृ. 187–188, इण्डियन कल्चर, उपरोक्त पृ. 77

38) व. रि. जमा बहियां (19वीं शताब्दी), बस्ता 4, 9, 16, ट्रीटीज, एंगेजमण्ट, खण्ड 3, पृ. 32

39) एनाल्स भा. 1, पृ. 166

40) एनाल्स, भा. 1, पृ. 186, बनेड़ा राज्य का इतिहास, पृ. 157

41) एनाल्स, उपरोक्त, सरक्यूलर रजिस्टर स्टेट महकमाखास, भा. 1, पृ. 247, मेवाड़ राज्य प्रबन्ध, पृ. 63

42) पो. वं. 11 नवम्बर 1854 ई. नं. 813, ट्रीटीज, एंगेजमेन्ट खण्ड 3, पृ. 25–27

43) व. रि. जागीर पट्टा खतूणी बही वि. सं. 1876 (1819 ई.) श्रावण वदी 1, बस्ता 10, पो. वं. 11 नवम्बर 1854 नं. 813

44) ट्रीटीज एंगेजमेण्ट, खण्ड 3, पृ. 20, 28 व 30

45) एनाल्स भाग 1 पृ. 172, ट्रीटीज एंगेजमेण्ट, खण्ड 3, पृ. 45–47, उ. ई. भा. 2, पृ. 736

46) एनाल्स भाग 1 पृ. 172, उ. ई. भा. 2, पृ. 736

47) एनाल्स, भा. पृ. 182–183, 203–205, बनेड़ा राज्य का इतिहास, पृ. 106

48) एनाल्स, भा. 1, पृ. 199–200